



# International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2024; 10(5): 62-64

© 2024 IJSR

[www.anantaajournal.com](http://www.anantaajournal.com)

Received: 01-04-2024

Accepted: 04-05-2024

हितेश शर्मा

शोधार्थी, हिमाचल प्रदेश  
विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश, भारत

डॉ. लता देवी

सहायकाचार्य, संस्कृत-विभाग,  
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,  
हिमाचल प्रदेश, भारत

## आचार्य शांतिदेव द्वारा विरचित बोधिचर्यावतार में ध्यान पारमिता का स्वरूप

हितेश शर्मा, डॉ. लता देवी

सारांश

इस चराचर जगत् में सभी सत्त्वों को भय तथा पीड़ा से मुक्ति प्रदान करने के लिये जब बोधिसत्त्व बुद्धत्व प्राप्ति हेतु अपनी षट् पारमिताओं की यात्रा प्रारम्भ करता है तो वह सर्वप्रथम बोधिचित्त का ग्रहण कर दान पारमिता को पूर्ण करता है। उसके पश्चात् स्मृति तथा संप्रजन्य द्वारा चित्त की रक्षा कर शील पारमिता, जगत् को क्षमा कर क्षान्ति पारमिता तथा बोधि प्राप्ति के लिये परिश्रम अथवा उद्योग कर वीर्य पारमिता को पूर्ण कर ध्यान पारमिता की ओर अग्रसर होता है। बौद्ध सम्प्रदाय में दो संभार कहे गये हैं। पुण्य संभार तथा ज्ञान संभार। दान पारमिता से लेकर ध्यान पारमिता तक सभी पारमितायें पुण्य संभार के अन्तर्गत आती हैं पुण्य संभार का अन्तिम पड़ाव ध्यान पारमिता है जिसमें साधक इस सम्पूर्ण संसार के विषयों से अपना ध्यान हटाता है तथा प्रज्ञा पारमिता में अपना ध्यान केन्द्रित करता है। सांसारिक विषयों के नुकीले दंत छिपे होते हैं। वह सभी मनुष्य की मुक्ति के मार्ग को अवरोधित करते हैं। इसलिये बोधिसत्त्व को इन विषयों से दूर रहने की आवश्यकता है।

**कूटशब्द:** ध्यान, पारमिता, एकान्तवास, शारीरिक बीभत्सता, शमथ, विपश्यना

प्रस्तावना

ध्यान पारमिता का स्वरूप तथा प्रयोजन

बोधिसत्त्व की साधना में ध्यान पारमिता का पांचवा स्थान है। जब साधक वीर्य पारमिता को पूर्ण कर आगे बढ़ता है तो वह ध्यान पारमिता को पूर्ण करने के लिये उद्यत होता है। ध्यान शब्द ध्यै धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ चिंतन करना, मनन करना तथा ध्यान करना है<sup>2</sup>। सांख्य दर्शन में 'ध्यानं निर्विषयं मनः'<sup>3</sup> अर्थात् मन का विषयों से रहित होना ही ध्यान कहा गया है। योग के आठ अंगों में ध्यान को सातवां स्थान दिया गया है।

'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि'<sup>4</sup>।

योग दर्शन के अनुसार जिस स्थान पर धारणा की गई हो उस स्थान में ज्ञेय विषयक, ज्ञान विषयक ज्ञान का एक समान बना रहना ध्यान है<sup>5</sup>। बौद्ध धर्म में भी ध्यान को इसी प्रकार से परिभाषित किया है।

आरम्भणूपनिज्ज्ञानतो पच्चनीक ज्ञापनन्तो वा ज्ञानं<sup>6</sup>।

अर्थात् आलम्बन को देखकर चिन्तन करने तथा प्रतिकूल धर्मों का अनुसरण न करना ही ज्ञान अथवा ध्यान कहलाता है। बुद्धत्व प्राप्ति से विपरीत बोधिसत्त्व का मन अन्य विषयों की ओर न झुक जाये इसलिये साधक को ध्यान की आवश्यकता होती है।

मानव के चित्त की गति अत्यंत विचित्र होती है। वह अनेक प्रकार की लालसाओं तथा विषयों के पीछे भागता ही रहता है। इसलिये ध्यान पारमिता के द्वारा चित्त को बांधना अत्यंत आवश्यक है जिससे वह प्रज्ञा पारमिता की प्राप्ति कर सके क्योंकि यदि साधक का चित्त स्थित न होकर विक्षिप्त है तो वह क्लेशों के जाल में ही फंसा रहता है<sup>7</sup>। क्लेशाधीन होने के कारण प्रज्ञा भी दूर स्थित होती है। इसलिये साधक को ध्यान पारमिता की आवश्यकता होती है। पारमिता शब्द पूर्णत्व का पर्यायवाची है। जब साधक ध्यान के पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है तब उसकी ध्यान पारमिता पूर्ण होती है। इस ध्यान पारमिता का अभ्यास बोधिसत्त्व ने ही नहीं अपितु कल्पकोटियों तक भगवान् बुद्ध ने भी किया था।

Corresponding Author:

हितेश शर्मा

शोधार्थी, हिमाचल प्रदेश  
विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश, भारत

‘पूर्व तुभ्य बहुकल्पकोटियो ध्यानं ध्यायित किलेष-ध्येषणात् ।  
तस्य ध्यानचरितस्य तत्फलं येन क्लेश जगतो न बाधते<sup>8</sup> ॥

अध्वानं प्रतिपन्नस्य यथावासपरिग्रहः ।  
तथा भवाध्वगस्यापि जन्मावासपरिग्रहः<sup>15</sup> ॥

पहले बहुत से करोड़ों कल्पों तक तुमने क्लेश धोने के लिये ध्यान चिंतन किया है। उस ध्यान के चरित्र का वह फल है जिससे क्लेश लोकों को सता नहीं रहे हैं।

जिस प्रकार ठीक से न छाये हुए घर में वृष्टि का जल घुस जाता है, उसी प्रकार ध्यान भावना से रहित चित्त में राग घुस जाता है<sup>9</sup>। इसलिए समय रहते इस ध्यान भावना को ग्रहण करने का उपाय सोच लेना चाहिए। जिससे साधक इन क्लेश रूपी दुर्गुणों को स्वयं से दूर रख सके। शांतिदेव ने बोधिचर्यावतार में कायविवेक तथा चित्तविवेक नामक दो उपाय बताये हैं जिनके द्वारा मन में विक्षेप अर्थात् दोलायमान स्थिति उत्पन्न नहीं होती। इसलिये जगत् के समस्त चक्करों का त्याग कर संकल्प-विकल्प को छोड़ने की ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए<sup>10</sup>।

### कायविवेक

काय शरीर का पर्यायवाची है। कायविवेक का सामान्य अर्थ शारीरिक एकान्त<sup>11</sup> है। साधक ध्यान पारमिता में पारंगत होने के लिये कायविवेक का आश्रय ग्रहण करता है। कायविवेक के अन्तर्गत ध्यान पारमिता में साधक को किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता। कायविवेक में साधक जनसंपर्क से दूर रहता है और यह अत्यावश्यक भी है क्योंकि स्नेह के वशीभूत होने से लाभ, सत्कार तथा यश आदि के प्रलोभन होने से संसार का त्याग नहीं किया जा सकता। साधक को यह सोचना चाहिए कि जिसने चित्तैकाग्रता द्वारा यथाभूत ज्ञान की प्राप्ति की है वही क्लेशादि दुःखों को दूर कर सकता है<sup>12</sup> और चित्त की एकाग्रता कायविवेक के बिना नहीं हो सकती। इसलिये साधक को कायविवेक की तरफ अग्रसर होना चाहिए। कायविवेक में सबसे बड़े अवरोधक साधक के मित्र, बांधव तथा सगे प्राणी हैं। मनुष्य प्रत्येक क्षण इन्हीं प्राणियों के मोह में उलझा रहता है। परंतु साधक को यह एहसास होना आवश्यक है जब उसका अपना शरीर भी नहीं है तो अन्य प्रियजन उसके अपने किस प्रकार हो सकते हैं। इन्हीं प्रियजनों के कारण उसका हृदय शुभ कार्य में नहीं लगता। प्रियजनों का समीप होना साधक के लिये खेद के समान है। जब तक साधक प्रियजनों के निकट रहेगा तो वह बुद्धत्व आदि कार्यों में अग्रसर नहीं हो पायेगा। इस कारण उसे बुद्धत्व प्राप्ति नहीं होगी और उसे जरा, व्याधि तथा पुनर्जन्म इत्यादि सभी दुःखों को झेलना पड़ेगा। इन्हीं सब कारणों को देखते हुए महात्मा बुद्ध ने भी प्रियजनों का त्याग करते हुए गृहत्याग किया था।

साधक का अवरोध केवल घर में रहने वाले प्रियजन ही नहीं करते अपितु घर से बाहर मिलने वाले पृथग्जन भी साधक को परेशान करते हैं। पृथग्जन सामान्यतः मूर्ख प्राणियों को कहा जाता है। पृथग्जन न तो अपना हित सोचते हैं और न ही दूसरों के हितों का ध्यान रखते हैं। ये अपने अहित के साथ दूसरों का अहित भी करते हैं। इसलिये शास्त्रों में इनसे दूर रहने के लिये ही कहा गया है। परंतु यदि यह कभी मिल भी जाए तो इनका उचित सत्कार कर उसके पश्चात् इनके साथ उदासीनता का व्यवहार करना चाहिए<sup>13</sup>। इस प्रकार साधक का हित न तो प्रियजनों और न ही पृथग्जनों के साथ है। इसलिये साधक को एकान्तवास का महत्त्व समझकर अकेला ही रहना चाहिए।

संसर्गजातस्य भवन्ति स्नेहा, स्नेहन्वयं दुःखमिदं पहाति ।  
दीनद स्नेइने पेक्खमानो, एको चरे विसाणकप्पो<sup>14</sup> ॥

संसर्ग में रहने से स्नेह उत्पन्न होता है और स्नेह से दुःख उत्पन्न होता है। इसलिये स्नेह के दुष्परिणाम को देखते हुए गँडे की तरह मनुष्य को अकेला विचरण करना चाहिए।

जिस प्रकार राहगीर कुछ समय तक धर्मशाला में रहकर अपनी थकान मिटा लेता है, परन्तु उस धर्मशाला के साथ अपनापन नहीं रखता ठीक उसी प्रकार साधक को भी इस जन्म तथा घर से क्या अभिप्राय हो सकता है। इसलिये समय रहते ही एकान्तवास की शरण लेनी चाहिए।

### चित्तविवेक

जिस प्रकार कायविवेक के द्वारा शरीर का रक्षण किया जाता है ठीक उसी प्रकार चित्तविवेक के द्वारा चित्त का रक्षण भी किया जाता है जिससे चित्त भटक न जाए। यह चित्त अथवा मन अत्यंत गतिवान है। यह क्षणभर में अपनी स्थिति को परिवर्तित करता है। वह कभी सुंदर शरीर के पीछे तो कभी धन के पीछे और इस संसार में विद्यमान विभिन्न विषयों के पीछे भागता ही रहता है। यह सभी विषयों में आसक्त होता है, इसके परिणामस्वरूप साधक भी विभिन्न विषयों की तरफ लालायित रहता है इसलिये ही चित्त को रोकना आवश्यक है। यदि चित्तविवेक का आश्रय न लिया जाए तो मनुष्य कभी भी समाधि के पायदान पर नहीं पहुंच सकता। धम्मपद में वर्णन है कि जिस व्यक्ति की श्रद्धा चंचल है, जो सद्धर्म को नहीं जानता तथा जिसका चित्त अस्थिर है, उसकी प्रज्ञा कभी भी पूर्ण नहीं हो सकती<sup>16</sup>। इसलिए चित्त को स्थिर करना अत्यंत आवश्यक है। चित्त को प्रतिक्षण यह एहसास दिलाना आवश्यक है कि जो यह चित्त साधक को सुंदर शरीर के पीछे दौड़ाता रहता है वास्तव में वह शरीर केवल गंदगी का ही भंडार है। मांस, चर्बी इत्यादि से भरा हुआ है। यह अत्यंत बदबुदार है परंतु खाल से ढका होने के कारण हम इसकी अशुद्धता को नहीं देख पाते। प्राणी का लगाव शरीर में इसलिए रहता है क्योंकि उसका चित्त स्थिर नहीं होता। यदि चित्त यह समझ ले कि इस शरीर के भीतर केवल, आंत, उदर, यकृत, इत्यादि है और इसके प्रत्येक छिद्र से केवल गंदगी का ही आगमन होता रहता है तो इस शरीर के मोह से चित्त को छुटकारा प्राप्त हो सकता है।

जिस प्रकार चित्त शरीर का मोह रखता है ठीक उसी प्रकार उसे धन का भी मोह होता है। साधक उस चित्त के कारण ही धन की अनित्यता के विषय में नहीं जान पाता। इसी धन से मनुष्य अपनी विषयवासनाओं को पूर्ण करता है क्योंकि मूर्ख लोग केवल विषयोपभोग के लिये ही नाशवान धन की रक्षा करते हैं<sup>17</sup> जब धन के द्वारा विषयों का उपभोग कर लिया जाता है तब उन विषयों के प्रति लालसा और अधिक बढ़ जाती है और धन का जब नाश हो जाता है तब प्राणी को अधिक क्लेशों का सामना करना पड़ता है। इससे मनुष्य को भली-भांति समझ लेना चाहिए कि यदि वह प्रत्येक क्षण धनार्जन में तल्लीन रहेगा तो उसे भवदुःखों से छुटकारा पाने का समय नहीं मिलेगा। इसलिये चित्त का दमन कर उसे सांसारिक सभी विषयों से हटाने का प्रयत्न करना चाहिए। जिस प्रकार सुवर्ण प्राप्त करने के लिये धूल धोने वाला आदमी आरम्भ से ही बड़े कणों को निकालता हुआ उसकी शुद्धि के लिये बारीक कणों को भी निकालता है और शुद्ध स्वर्ण को रख लेता है, ठीक उसी प्रकार मुक्ति प्राप्त करने के लिये योगी आरम्भ से ही बड़े दोषों को छोड़ता हुआ चित्त की शुद्धि के लिये सूक्ष्म दोषों को भी छोड़ता है और शुद्ध करके धर्म के अवयवों को रख लेता है। इसलिये साधक को विचार कर अपना चित्त ध्यानालम्बन में लगाना चाहिए।

### शमथ

साधक जब अपने चित्त को कुविषयों से हटाकर केवल एक स्थान पर केन्द्रित करता है, तो वह शमथ की ओर अग्रसर हो जाता है। ‘शमथः चित्तैकाग्रतालक्षण समाधिः’<sup>18</sup> चित्त की एकाग्रता रूपी समाधि को ही शमथ कहते हैं। इसी शमथ के द्वारा प्रज्ञाभावना से संलग्न

पुरुष ही क्लेशों का नाश करने में समर्थ हो पाता है इसलिये सर्वप्रथम शमथ का अभ्यास आरंभ करना चाहिए जो कि संसार से विरत रहने पर ही प्राप्त होती है। शमथ के पश्चात् विपश्यना का स्थान आता है जो यथाभूततत्त्व की परिज्ञान स्वभाव वाली प्रज्ञा है। इसका अर्थ ज्ञान ही होता है। शमथ और विपश्यना दोनों साथ ही चलते हैं। एक के बिना दूसरे का कोई स्वरूप तथा औचित्य नहीं है। 'ध्यानाभावऽपि न जायते सा प्रज्ञा'<sup>19</sup>। ध्यान के अभाव में प्रज्ञा भी उत्पन्न नहीं होती है।

### वर्तमान संदर्भ में ध्यान पारमिता की आवश्यकता

आज के परिप्रेक्ष्य में मानव केवल स्वार्थ पथ पर अग्रसर रहता है। उसे पराई तकलीफ का जरा भी एहसास नहीं होता। परन्तु जब कभी उसका ज्ञान चक्षु खुलता है तो वह सोचता है कि यह समस्त संसार दुःखों से परिपूर्ण है। प्रत्येक प्राणी केवल विषयोपभोग में ही आसक्त है। यह सोचकर बोधिसत्त्व उनकी मुक्ति के लिये बोधिचर्या प्रारंभ करता है। आज के परिप्रेक्ष्य में साधक दान दे सकता है, अपना चित्त सुरक्षित कर सकता है, प्राणियों को क्षमा दान भी दे सकता है और बोधि प्राप्ति के लिये अत्यधिक उत्साह भी दिखा सकता है परन्तु वह अपनी काय और अपने चित्त को नियंत्रित कर पाने सक्षम नहीं हो पाता जबकि आज इस नियंत्रण की आवश्यकता सबसे अधिक है। शारीरिक एकांत साधक के चित्त के मार्ग को समाधि की ओर प्रशस्त करता है। यही समाधि प्रज्ञा के मार्ग को प्रशस्त कर सकती है। सांसारिक मोह को त्याग कर ही इस संसार के समस्त दुःखों से छुटकारा प्राप्त हो सकता है। ध्यान के द्वारा ही सभी विषयों से मन को हटाकर प्रज्ञा में प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

### निष्कर्ष

सभी प्राणियों को ध्यान पारमिता में ही स्थित होकर इस संसार के लिये इस संसार से दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए। बोधिसत्त्व की जो प्रतिज्ञा उसे प्रत्येक पारमिता को पूर्ण करने के लिये उत्साहित करती है वही उसे ध्यान पारमिता पर भी चिंतन करने के लिये विवश करती है। ध्यान और प्रज्ञा दोनों एक सिक्के के पहलू हैं। ध्यान के बिना प्रज्ञा का भी कोई अर्थ नहीं है। इसलिए साधक को ध्यान पारमिता की आवश्यक रूप से चर्या करनी चाहिए।

### सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वर्धयित्वैमुत्साहं समाधौ स्थापयेन्मनः, बोधिचर्यावतार, 8.1 शांतिदेव, सम्पादकः स्वामी द्वारिकादास शास्त्री बौद्धभारती वाराणसी, 1998
2. संस्कृतधातुकोशः, पृ.-54
3. सांख्यार्यभाष्य, पृ. 292 पण्डित आर्यमुनि, हरियाणा साहित्य संस्थान रोहतक, वि.सं-2033
4. योगदर्शनम्, पृ.-172, महर्षि पतंजलि, दर्शन योग महाविद्यालय, 2003
5. तत्रप्रत्ययैकतानता ध्यानम्, वही, पृ.-215
6. विसुद्धिमग्ग, पृ.-121 बुद्धघोष, वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, 1969
7. विक्षिप्तचित्तस्तुनरः क्लेशदंष्ट्रान्तरे स्थितः। बोधिचर्यावतार, 8.1
8. ललितविस्तर, कारिका-142 शांतिभिक्षु शास्त्री, उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान, 1994
9. धम्मपद, कारिका-13 डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
10. कायचित्तविवेकेन विक्षेपस्य न सम्भवः। तस्माल्लोकं परित्यज्य वितर्कान् परिवर्जयेत्।। बोधिचर्यावतार, 8.2
11. पालि-हिन्दी कोश, पृ.-96 भदन्त आनंद, कौसल्यायन, सम्यक् प्रकाशन, 2012

12. बौद्ध-धर्म-दर्शन, पृ.-208 आचार्य नरेन्द्र देव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 2000
13. बोधिचर्यावतार, 8.14
14. सुत्तनिपात, खग्गविसाणसुत्त, कारिका-2 डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी 1983
15. बोधिचर्यावतार, 8.34
16. धम्मपद, कारिका-38
17. मूढा विषयभोगाय रक्षन्ति धनमध्रुवम्। बुद्धचरितम्, 18.61 अश्वघोष, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी 1977
18. बोधिचर्यावतार, पंजिका, पृ.-207
19. सुहल्लेख, पृ. 126 पेमा तेनजिन, केन्द्रिय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान वाराणसी 1996